

श्रीवृन्दावन में निवास, सत्संग और आनन्द

श्रीकृष्ण शब्द का अर्थ है, आकर्षण करनेवाला । जैसे चुम्बक शुद्ध लोहे को अपनी ओर आकर्षित करता है, चुम्बन करता है, ठीक वैसे ही श्रीकृष्ण भी शुद्ध हृदय को अपनी ओर आकर्षित करते हैं । ब्रह्मामें यह आकर्षण नहीं है । जिज्ञासु अपनी गति से ब्रह्म की ओर बढ़ता है । श्रीकृष्ण अपनी वंशी ध्वनिसे, नूपुरों की झंकार से, दिव्य सौरभ से, मुकुट की लटक से, नयनों की पैनी अनी से, अमृतमयी बोलन से, मन्द-मन्द मुस्कान से, और अपनी चटकती मटकती चुलबुलाहट से छेड़-छेड़ कर भक्तजनों के हृदय को अपनी ओर आकर्षित करते हैं । उनकी रूपमाधुरी, लीलामाधुरी, वंशीमाधुरी और प्रियामाधुरी अपूर्व है । एक बार वे जिसके हृदय में गुदगुदी पैदा कर जाते हैं, उसे सदा के लिये एक लालसा, एक आकर्षण, एक प्रणय-निमन्त्रण दे जाते हैं, जिसके कारण वह प्रेमी चाहे कहीं भी रहे और कुछ भी करे, उनके पास पहुंचने के लिये तड़पता और छटपटाता रहता है ।

श्रीभक्तकोकिलजी के स्निग्ध मुग्ध मधुर हृदय को एक बार श्रीकृष्ण ने स्पर्श कर दिया था । उनके हृदयरूप क्षीरसागर की भावलहरियों को उद्वैलित कर लिया था । उनके हृदय की उर्वरा भूमि में कृष्ण किसान ने राह चलते मानों अनजान में ही प्रेम का बीज डाल दिया था । वह धीरे-धीरे अंकुरित पल्लवित और

पुष्पित होकर फलित होने पर आया । श्रीस्वामीजी सिन्ध से श्रीनाथद्वारे आये । वे जहां भी जाते, चाहे जिस देवता का दर्शन करते, यही प्रार्थना करते और सेवकों से भी कहते कि प्रेमभूमि ब्रजभूमि में श्रीराधामाधव पादपद्मों की छत्रछाया में, उन्हीं के लाड़प्यार के सहारे जीवन व्यतीत करूं । श्रीनाथद्वारे में एक मार्ग है । श्रीनाथजी महाराज घोड़पर चढ़कर उसी मार्ग से श्रीवृन्दावन की यात्रा करते हैं । मिठड़े बाबल साईं अपने करकमलों से उस मार्ग के गड़डे पाट रहे थे और रास्ते को सम और सुकोमल बना रहे थे । उसी समय एक अपरिचित बालक उनके पास आया और बोला-‘बाबा’ आप थक गये होंगे । छोड़ो मैं ठीक करता हूं ।’ साईं साहब ने पूछा-‘तुम कौन हो बेटा ?’ बालक-‘मैं पास के गांव का ग्वाला हूं ।’ स्वामीजी बोले-‘बेटा ! अभी तुम नन्हें हो । यह काम तुम्हारे करने योग्य नहीं है ।’ इतना कहकर स्वामीजी काम में लग गये । क्षणभर बाद आंख उठाकर देखा कि बालक का वहां कहीं पता नहीं है । स्वामीजी को आश्चर्य हुआ । रात को स्वप्न में श्रीनाथजी ने कहा-‘वह ग्वाला मैं ही था । आपका परिश्रम मुझसे देखा नहीं गया । आपकी चिरकालीन आशा, आकांक्षा, लालसा पूर्ण होगी । जिसके लिये आप अत्यन्त उत्कण्ठित रहते हैं और सबसे प्रार्थना करते हैं । आप सर्वदा के लिये ब्रजभूमि में निवास करोगे ।’

इस घटना के बाद श्रीस्वामीजी के हृदय में ब्रजभूमि में निवास करनेकी उत्कण्ठा और भी तीव्र हो गयी । जब वे भजन में

बैठते, तब उन्हें ऐसा अनुभव होता कि बरसाने के सुन्दर मन्दिर से श्रीवृन्दावनेश्वरी मैया मुझे पुकार रही हैं । जैसे नन्हा सा शिशु अपनी स्नेहमयी माँ का मुख देखे बिना दूर से आवाज़ पहिचानकर गोद में पहुँचने के लिये व्याकुल हो जाता है, वैसे ही स्वामीजी वह पुकार सुलकर विह्वल हो उठते । वे मन-ही-मन गुनगुनाने लगते --

इस गुम्बज में श्रीराधाजू वाक् रही है ।

परदे में बैठे वह मुझे झाँक रही है ॥

‘अहो ! यह दूरी का परदा दूर हो जाय, मैं शीघ्र अपनी प्यारी मैया से जा मिलूँ, जी भरकर उनका दर्शन करूँगी । स्वामिनी अम्बा मुझे पल-पल पर बुला रही हैं और मैं यहाँ बैठकर सुनती रहूँ ? अब तो यही अभिलाषा होती है कि श्रीराधा अम्बा के कुसुम के समान कोमल चरणों पनही बनकर अपनी गोद में बैठा लूँ । गोपियों के घरों में घूमती फिरूँ । गोपियों के हृदय में जो युगल के मधुर विहार होते हैं, वह देखती रहूँ । ब्रजभूमि की उस मधुर मधुर हरियाली में झूमती फिरूँ, जिसमें युगलसरकार प्रेम-विहार करते रहते हैं । इस प्रकार स्वामीजी प्रेमभूमि ब्रजभूमि की सलोनी स्मृति में डूबे रहते और सत्संग में ब्रज की हरियाली, आनन्द और महिमा का ऐसा अनुपम वर्णन करते कि सबकी आँखों के सामने वही झाँकी झलकने लगती । सबके मन में यही उमंग तरंगायित होने लगते कि-‘पंख होते तो हम अभी उड़कर श्रीवृन्दावन पहुँच जाते ।’ वैसे श्रीभक्त-

कोकिलजी प्रतिवर्ष तीन-चार महीने ब्रज में रहते, परन्तु भगवत्कृपा से सर्वदा ब्रज में रहने का समय आ गया ।

श्रीस्वामीजी जिन दिनों कराची में निवास कर रहे थे ।
उन्हीं दिनों रात्रि के समय स्वप्न में श्रीगुरुनानकसाहब एक वृद्ध महापुरुष के रूप में प्रगट हुए और बोले-‘अब सिन्ध छोड़कर ब्रजभूमि में सदा के लिये निवास कीजिये ।’ गुरुसाहब की आज्ञा सुनकर श्रीस्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए और संवत् १९६६ पुरुषोत्तम मास में थोड़े से सत्संगियों के साथ सदा के लिये ब्रजभूमि में आ गये । लोगों की भीड़-भाड़ और मानप्रतिष्ठा से अत्यन्त दूर ब्रजयुवराज की प्रेमयी एकान्त राजधानी श्रीवृन्दावन का दर्शन और निवास प्राप्त करके श्रीस्वामीजी दिव्य प्रेम मधुर लीला और अलौकिक आनन्द का अनुभव कीरने लगे । वे प्रेमोन्मत होकर वृन्दावन की हरी भरी लहलही ललित लताओं के कुंजों में विचरने लगे । कभी मोतीझील, कभी श्रीजी की बगीची, कभी रसिक शिरोमणि श्रीहरिदासजी का स्थान, कभी श्यामकुटी और कभी भानुनन्दिनी कालिन्दी के पावन पुलिन पर सारा-का-सारा दिन एकान्त भजन और सत्संग में छके छके बिता देते ।

श्रीस्वामीजी अब अपने परिकर के साथ वन-उपवन में विचरण करने के लिये जाते, तो पहिले सब लोग एकान्त झाड़ियों में अलग अलग नित्य नयीं नयीं लीलाओं का अनुभव करते और भावमें तन्मय हो जाते । कुछ देर के बाद श्रीस्वामीजी के बुलाने पर सब उनके पास आ बैठते और सत्संग की चर्चा चलती । एकबार

सत्संग में श्रीवृन्दावन की महिमा का प्रसंग चला । श्रीस्वामीजी ने कहा युगलसरकार और प्रेममयी गोपियों के प्रेम की यहाँ ऐसी छटा छायी हुई है कि हृदय पर प्रेम की सहज मादकता छायी रहती है ।

एक भक्त ने अपना अनुभव सुनाया-‘साई ! एक दिन एकान्त में बैठकर मैं सोचने लगा-‘सब कहते हैं कि बृजभूमि प्रेममयी हैं, सो कैसे ?’ इस भाव में डूबकर मैंने देखा-यहाँ के वृक्ष-पत्ते, फल-फूल, घास-लता, रज के कण-कण, अणु-अणु, सभी प्रेमी भक्त हैं । यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ और सोचने लगा-‘अब इस भूमि पर पाँव कैसे रखूं ?’ संकोचवश बहुत देर तक बैठा रहा । फिर यह भाव उदय हुआ कि यह प्रेम का स्रोत कहाँ से आ रहा है ? जिससे यह भूमि प्रेममयी हो गयी है । मैंने उसी समय देखा-एक नयन मनोहरी सुषमा सदन निभृत निकुंज है और उसमें नित्यकिशोर परम मधुर श्याम-गौर की जोरी व्याकुल होकर ऐसी उत्कण्ठा से परस्पर मिल रही है मानों एक दूसरे में समा जाना चाहते हों, परन्तु यह मिलन की प्यास बुझने के स्थान पर और भी बढ़ती जा रही है, दोनों परस्पर एक दूसरे के भुजपाश में बँधे हुए हैं । दोनों ही एकदूसरे से कह रहे हैं-‘कभी मुझसे अलग तो नहीं होंगे ?’ कभी श्याम गौर और कभी गौर श्याम हो जाते हैं । फिर भी प्रेम की पिपासा उन्हें शान्त नहीं रहने देती । वे मिलकर अलग होते हैं और अधिक तीव्र गति से दौड़-दौड़कर मिलते हैं । दोनों के प्राण, दोनों की आत्मा एक हैं, हित ने दोनों को विवश कर दिया है । दोनों की

सुध-बुध अपने काबू में कर ली हैं । इस प्रकार युगलसरकार 'हित' की गोदी में बैठ नेम और प्रेम के हिंडोले में झूल ही रहे थे कि दोनों के बीच में एक लता आ गयी । उनको ऐसा प्रेम वैचित्य (प्रेम की गाढ़ता से संयोग में ही वियोग की भ्रान्ति) का उदय हुआ कि दोनों यह समझने लगे कि हम एक दूसरे से बहुत दूर हो गये हैं और 'हा प्यारी !' 'हा प्यारे !' ऐसा प्रलाप करते हुए एक दूसरे को पुकारने लगे । उस करुण क्रन्दन से पशु-पक्षी, लता-वृक्ष और रजके कण-कण भी जो कि भक्त ही थे, रोने लगे । श्रोदनध्वनि से वन गूंज उठा । लता करुणा से द्रवित होकर युगल के बीचसे हट गयी । एक ने दूसरे को पहिचाना । वायुसे भी तीव्र गति से दौड़ पड़े । लता-वृक्ष दूसरी ओर झुक गये । भूमि समतल हो गयी । कांटे-कुश नवनीत के समान कोमल हो गये । दोनों एक दूसरे से लिपट गये । पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, रजकण 'जय हो !' 'जय हो !' की प्लुत ध्वनि से मुखरित हो उठे । मेरा ध्यान टूटा और खुली आँखों से मैंने देखा कि ब्रजभूमि प्रेममयी है ।

श्रीस्वामीजी ने कहा-‘वस्तुतः वृन्दावन ऐसा ही है । जैसे कोई महापुरुष पुरानी गुदड़ी औढ़कर अपने को छिपाकर बैठा हो, वैसे ही इसने अपनी दिव्यता एवं वैभव छिपा रखा है । श्रीवृन्दावनेश्वरी की कृपा से ही कभी-कभी दिव्य दर्शन प्राप्त होता है ।’

एकबार श्रीस्वामीजी से एक महात्मा ने पूछा-‘आप इस पूर्णिमा तक तो यहाँ रहेंगे ?’ श्रीस्वामीजी ने प्रेमोल्लास से भरकर

कहा-‘हम तो कोटि-कोटि पूर्णिमा तक यहाँ रहेंगे । हमें आप आशीर्वाद दे कि ब्रजभूमि अपनी गोद से कभी अलग न करें ।’

श्रीस्वामीजी जब विचरण करने के लिये बाहर निकलते तब कुछ खाने की चीज अपने साथ ले चलते थे । साधुओं और गरीबों को बाँटते थे । सबके चरणों की वन्दना करते । हरिजनों का भी स्पर्श कर लेते और उनका भी चरण-वन्दन करते । एक बार किसी महात्मा ने कहा- साईं जी ! आप उन्हीं हाथों से भंगी-चमारों का पाँव छूते हैं और फिर हमें स्पर्श करते हो; यह बात ठीक नहीं । स्वामीजी ने सरल भाव से कहा-‘हमें तो ब्रज में सब गोपी-कृष्ण ही दिखायी देते हैं ।’ महात्माजी बहुत प्रसन्न हुए ।

श्रीस्वामीजी की सत्पुरुषों में, साधु-सन्तों में गम्भीर श्रद्धा थी । ब्रज में भी वे जहाँ तहाँ घूम-घूमकर साधु सन्तों के दर्शन करते और उनसे प्रार्थना करते-‘हमें ऐसी सेवा बताइये, निःसंकोच आज्ञा दीजिये, जिससे आपका भजन निर्विघ्न होता रहे ।’ स्वामीजी की श्रद्धा, निर्लोभ और संकोची सन्तों को भी अपने मन की बात बता देने के लिये प्रेरित करती । वे स्वामीजी को अपना कोई घनिष्ठ सम्बन्धी समझते । जब स्वामीजी किसी साधू को धूप में नंगे पाँव घूमते देखते तो उसकी इच्छा न होने पर भी जबरदस्ती उसे जूता पहनाते । वस्त्र, लोटा, चिप्पी, भोजनादि देते । किसी किसी के लिये कुटिया बनवा देते । बहुतों को महावाणी, लाड़सागर आदि लिखवा दिये । कितनों को श्रीमद्भागवत और रामायणादि सद्गन्थ दिये । इस प्रकार वे

सन्तों को सदा सुख पहुँचाते और सेवा करते रहे । अनेक महात्माओं के साथ उनका अत्यन्त घनिष्ठ प्रेमसंबंध हो गया ।

श्रीस्वामीजी प्रायः टहलने के लिये मोतीझील पर आते थे । उसी रास्ते कलाधारी के महन्तजी प्रतिदिन शहर की ओर जाते थे । श्रीस्वामीजी अपने स्वभाव के अनुसार उन्हें मिठाई देना चाहते, परन्तु महन्तजी कहते-‘हमें इच्छा नहीं है । किसी और को दे देना ।’ एक दिन स्वामीजी ने देखा कि महन्तजी श्रीवृन्दावन के तरु-लताओं का आलिंगन करके भाव मग्न हो रहे हैं । श्रीस्वामीजी ने किसी से पूछा-‘ये कौन हैं ?’ तब पता चला-यह तो महन्तजी हैं । यह जानकर स्वामीजी को बड़ी श्रद्धा हुई । महन्त होकर ऐसी सादा रहन-सहन, नम्रता और ब्रजभूमि से ऐसा प्रेम दुर्लभ है । क्रमशः श्रीस्वामीजी का उनके पास आना-जाना, प्रेम-परस्पर बढ़ता रहा । श्रीस्वामीजी प्रायः कहा करते थे-‘इस आश्रम में भजन अच्छा होता है और साधु-सेवा भी बहुत बढ़िया होती है ।’

एक दिन स्वामीजी हाथी बाबा का दर्शन करने गये । वे यमुनाजी के तट पर एक सघन वृक्ष की छाया में झूलेपर लेट रहे थे । श्रीस्वामीजी के द्वारा भेंटके लिये लाये हुए फल देखकर बोले-‘आजकल लोगों के चित्त में सकाम भाव बहुत अधिक है । ऐसी चीज खाने से शरीर ठीक नहीं रहता, इसी से मैं नहीं खाता हूँ । श्रीस्वामीजी ने कहा-‘और इच्छा की तो मैं नहीं कहता, यह इच्छा तो ज़रूर है कि--

‘सब कर मांगउँ एक फल, श्रीराम चरणरिति होइ ।’

श्रीहाथी बाबाजी ने स्वामीजी को गले लगाकर कहा-‘यह कामना नहीं है । उनकी बेड़ी काटने वाली टाँकी है । स्वामीजी कभी-कभी उनके सत्संग में जाया करते और उनकी सेवा भी करते थे ।

एकबार श्रीस्वामीजी रिक्शे में आ रहे थे । सामने दिख गये श्रीहाथीबाबाजी । सो उन्होंने विनय और श्रद्धा से उतर कर दण्डवत् प्रणम किया और अपना धूप को चश्मा हाथीबाबा को पहिना दिया तथा प्रार्थना की कि इसे धूप में अवश्य पहिना करो । स्वामीजी की श्रद्धा-भक्ति एवं सेवाभाव देखकर श्रीहाथीबाबाजी बहुत प्रसन्न हुए ।

श्रीस्वामीजी श्रीयमुनाजी के पावन पुलिन पर घूमते थे । वनविहार के श्रीमाधवदासजी जब उधर से निकलते, तब वे उन्हें बड़े प्रेम से प्रणाम करते थे । एक दिन उन्होंने पूछा-‘क्या आप सिन्ध में रहते हैं ?’ स्वामीजी ने कहा-‘जी हां ! परन्तु अब आप सन्तों की कृपा से ब्रजभूमि का अचल निवास प्राप्त हुआ है । हमारे योग्य कोई सेवा हो तो निःसंकोच कृपा कीजिये । उन्होंने सिन्धी सुर्मा के लिये आज्ञा की । श्रीस्वामीजी ने उनकी कुटी का पता पूछ लिया और दूसरे दिन स्वयं सुर्मा लेकर वनविहार चले ।’ हरे भरे लता-वृक्षों से मण्डित, शान्त, एकान्त आश्रम देखकर स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए । सत्संग के प्रसंग में उनसे यह

सुनकर । ‘नन्दबाबा की गायें, कभी-कभी इधर से निकलती हैं, उनके दर्शन के लिये स्वामीजी दिनभर वहीं रहे । सन्ध्या समय उन गौओं के दर्शन करके बहुत ही आनन्दित हुए । उनसे और उनके सेवक श्रीरासेश्वरीशरणजी से भी श्रीस्वामीजी का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा ।

एक दिन सत्संगियों के समाज में श्रीस्वामीजी ने नवद्वीप के महात्मा श्रीवंशीदासजी की चर्चा की । वहाँ की यात्रा के समय उनका दर्शन हुआ था । उनके प्रेमोन्माद के प्रसंग में स्वामीजी ने कहा-‘उनके दर्शन की इच्छा होती है ।’ दूसरे ही दिन सेवकों ने आकर यह शुभ संवाद दिया कि वंशीदासजी यमुनातट पर पधारे हैं । उसी समय श्रीस्वामीजी फल-फूलादि लेकर उनके पास गये । महात्माजी युगलमूर्ति के पास बैठे रहते और उन्हीं से बातचीत करते । और किसी से नहीं बोलते । उन्हें सर्दी लगती तो ठाकुर को वस्त्र ओढ़ा देते, गर्मी लगती तो ठाकुर के भी वस्त्र उतार देते । ऊँट देखकर ठाकुर से कहते-‘इस पर चढ़ेंगे क्या ?’ स्त्रियों को देखकर कहते-‘इन ग्वालिनों से माखन छीनोंगे ?’ कुता भौंकता तो पूछते-‘लाला ! तुम्हें डर तो नहीं लगता ?’ ठाकुर को वस्त्रहीन देखकर एक सेवक ने स्वामीजी से कहा-‘यह महात्मा अपने ठाकुर को वस्त्र क्यों नहीं पहनाते ?’ महात्मा अपनी धुन में गाने लगे --

पहिरे नील पीत पट सारी । रतन सिंहासन बैठे पिया प्यारी ॥

श्रीस्वामीजी जब-जब उनके दर्शन को जाते, वे अपनी

ठाकुर से प्रेम की नई-नई बातें करने लगते । उनके सेवक कहते-
श्रीवृन्दावन में निवास सत्संग और आनन्द

२६३

‘आप प्रतिदिन आया करो, जिससे हमें भी इनके मुखरविन्द की मधुर वाणी सुनने को मिले ।’ श्रीवंशीदासजी के नन्दग्राम से लौट आने पर स्वामीजी ने कहा-‘ अब आप नन्दग्राम में ही रहिये । वहाँ बड़ा आनन्द है । हम आपको कुटिया बनवा देते हैं ।’ महात्माजी की आँखों में आँसू छल-छला आये । वे महाप्रभु गौरांग देव का स्मरण करके बोले- नन्दबाबा से पूछिये, जिसका बेटा सन्यासी हुआ है, वह कुटिया में रहना चाहेगा कि नहीं ?’ वे बच्चों की तरह रोने लगे । श्रीस्वामीजी उनका यह भाव देखकर बड़े प्रसन्न हुए ।

श्रीस्वामीजी कैमार वन में श्रीकाठियाबाबा के स्थान में श्रीयुगलसरकार का दर्शन करके बड़े प्रसन्न होते । वह स्निग्ध मुग्ध प्रेमपूर्ण श्रीविग्रह उन्हें बहुत ही प्यारा लगता । भक्तजनों का कहना है कि श्रीकाठियाबाबा का शरीर जब ब्रजरज में लीन हुआ था, तब श्रीप्रियाजी के नेत्रकमलों से कई दिनों तक आँसुओं की बूँदें टपकती रहती थीं ।

एक दिन श्रीस्वामीजी ने वर्तमान महन्तजी को जाकर प्रणाम किया । महन्तजी गर्मी के कारण अपने हाथ से ही पंखा झल रहे थे । वहीं उनके सद्गुरु के स्वरूप पर बिजली का पंखा चल रहा था । श्रीस्वामीजी ने उनसे पूछा-‘आप बिजली का पंखा

क्यों नहीं लगवाते ?’ महन्तजी बोले-‘श्रीगुरुदेव के ऊपर पंखा चल रहा है, इसीसे हमें सन्तोष है । सेवकको सद्गुरु की बराबरी नहीं करनी चाहिये ।’ स्वामीजी को उनका यह भाव बहुत प्रिय लगा । वे कभी कभी उनका दर्शन करने आते, सत्संग होता । सद्गुरु का प्रसंग चलता । वे अपने श्रीगुरुदेव की वाणी सुनाते कि ‘महन्ती अपनी पूजा करवाने के लिये नहीं मिलती है । यह तो सन्तों की सेवा करने के लिये ही है । जब सन्त सेवा करने की भावना जाग्रत हो, तभी महन्ती करने की योग्यता मिलती है ।’ उनके पत्र एवं उपदेश भी सुनाते ।

एक दिन महन्तजी ने स्वामीजी से कहा-‘मेरे गुरुभाई देवादासजी आये हैं । उनका दर्शन कीजिये ।’ स्वामीजी उनके पास आये । दण्डवत् प्रणाम के पश्चात् उन्होंने पूछा-आप कौन हैं ? स्वामीजी ने कहा-‘हम गृहस्थ हैं ।’ महात्मा ने कहा-‘आप अपने को छिपाते क्यों हो ? मेरा हृदय कहता है कि आप सन्त हैं ।’ इतना कहकर उन्होंने स्वामीजी का आलिंगन किया और बोले-‘देखिये, आपके स्पर्श से मेरे शरीर में रोमांच होते हैं ।’ धीरे धीरे दोनों की प्रेम पहचान बढ़ती गई । स्वामीजी बढ़िया बढ़िया वस्तुयें उनके पास ले जाते; परन्तु वे अस्वीकार कर देते थे । स्वामीजी को सन्तों की निःस्पृहता बहुत प्यारी लगती थी । इसलिये वे निर्लोभ सन्तों पर सब कुछ न्यौछावर कर देते थे । श्रीदेवादासजी ज्योतिष विद्या में बड़े निपुण थे । उन्होंने एकबार स्वामीजी से कहा-‘आप छः वर्ष तक सिन्ध में न जाना

और किसी का कुछ न खाना ।’ श्रीस्वामीजी ने सिन्ध के भक्त जब जब वहाँ जाने के लिये अनुनय विनय करते, तब तब स्वामीजी उन महात्मा के वचन दुहराते और कहते-‘हम महात्मा का वचन भंग नहीं कर सकते ।’ वैराग्यमूर्ति स्वामीजी को लोगों से पल्ला छुड़ाने का अच्छा सहारा मिल गया ।

श्रीवृन्दावनधाम में श्रीसाकेतलोक श्रीरामबाग मन्दिर में जब प्रतिष्ठा महोत्सव हो रहा था । श्रीस्वामीजी भी अपने प्राणाराम श्रीसीताराम का दर्शन करने के लिये गसे । वहाँ के महन्त, भजनानन्दी, महात्मा श्रीसंकर्षणदासजी को निरन्तर हरिनाम जपते देखकर स्वामीजी को बहुत आनन्द हुआ । उनके ओष्ठ हिलते ही रहते हैं । किसी प्रश्न का उत्तर देने के बाद वे तत्काल नाम जप करने लग जाते हैं । स्वामीजी मन्दिर में ठाकुरजी का दर्शन करके महन्तजी से सत्संग करते । वे अपने जीवन की साधना, तपस्या और कष्ट सहन का वर्णन करते । एक दिन उन्होंने ब्रजमहिमा का वर्णन करते हुए कहा-‘हम निर्बल जीव कुछ नहीं कर सकते । ध्रुव-प्रह्लाद् के समान नाम जप महाराज पृथु के समान पूजा-अर्चा अब कौन कर सकता है ? हम आलसी जीव धाम में पड़े हैं, कभी-कभी ब्रजरज उड़कर मुखमें पड़ जाती है, इसी से कल्याण हो जायेगा ।’ महन्तजी कभी कभी अवध सरकार की विचित्र कथायें सुनाते थे ।

एकबार श्रीस्वामीजी के किसी भोले सेवक ने महन्तजी के पूछने पर स्वामीजी की कीर्ति, महिमा एवं श्रीअवधसरकार के

चरणों में अगाध अनुराग का बड़े विस्तार से वर्णन किया । महन्तजी यह सुनकर कि हमारे और स्वामीजी के इष्टदेव एक ही हैं, बड़ी प्रसन्नता हुई और ज बवे दर्शन करने आये तो उन्होंने बड़ा आदर-सत्कार किया, परन्तु स्वामीजी का स्वभाव ही मान प्रतिष्ठा से दूर भागने का था । स्थान पर लौटकर उन्होंने सेवक को डांटा और कहा-‘तुमने रस ही बिगाड़ दिया ।’ इसके बाद बहुत दिनों तक स्वामीजी वहाँ दर्शन करने नहीं गये । महन्तजी के स्मरण करने पर- सेवक से कहला भेजा कि वहाँ की मान-प्रतिष्ठा से मुझे संकोच होता है । महन्तजी स्वामीजी के निर्मान स्वभाव को जानकर बड़े प्रसन्न हुए और सन्देश भेजा-‘जैसे आपको प्रसन्नता होगी, हम वही करेंगे ।’ फिर स्वामीजी पहिले की ही भाँति वहाँ दर्शन करने के लिये आने-जाने लगे ।

उदासीन महामण्डलेश्वर वेददर्शनाचार्य प्रज्ञाचक्षु स्वामी श्री गंगेश्वरानन्दजी महाराज से स्वामीजी का सिन्ध से ही परिचय था । उनका प्रगाढ़ पाण्डित्य एवं आश्चर्यजनक मेधा देखकर स्वामीजी बहुत प्रसन्न होते । उन दिनों श्रौतमुनिनिवासाश्रम बनने की चर्चा चल रही थी और महाराज सिन्धी धर्मशाला में विराजमान थे । दर्शन-सत्संग के प्रसंग में स्वामीजी ने कहा-‘अब तो आप सर्वदा वृन्दावन ही निवास करेंगे ?’ महाराज बोले-‘मैं तो श्रीबाँकेबिहारीजी का सिपाही हूँ । वे जहां रखेंगे, वहीं रहूँगा ।’ स्वामीजी ने कहा-‘रसिक सन्त कहते हैं कि दूसरे देश में भजन करना और वृन्दावन में सोना समान हैं ।’ महाराज

बोले-‘यह वचन धाम की महिमा का द्योतक है । इसका सहारा लेकर आलसी नहीं होना चाहिये । इस वचन का यह आशय ग्रहण करना चाहिये कि जहाँ सोना भी भजन के समान है, वहाँ का भजन कितना महत्वपूर्ण होगा ।’